Chapter ग्यारह

परमाणु से काल की गणना

मैत्रेय उवाच

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; चरमः—चरम; सत्—प्रभाव; विशेषाणाम्—लक्षण; अनेकः—असंख्य; असंयुतः—अमिश्रित; सदा—सदैव; परम-अणुः—परमाणु; सः—वह; विज्ञेयः—जानने योग्य; नृणाम्—मनुष्यों का; ऐक्य—एकत्व; भ्रमः—भ्रमित; यतः—जिससे।

भौतिक अभिव्यक्ति का अनन्तिम कण जो कि अविभाज्य है और शरीर रूप में निरुपित नहीं हुआ हो, परमाणु कहलाता है। यह सदैव अविभाज्य सत्ता के रूप में विद्यमान रहता है यहाँ तक कि समस्त स्वरूपों के विलीनीकरण (लय) के बाद भी। भौतिक देह ऐसे परमाणुओं का संयोजन ही तो है, किन्तु सामान्य मनुष्य इसे गलत ढ़ग से समझता है।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* का परमाणु सम्बन्धी विवरण परमाणुवाद के आधुनिक विज्ञान जैसा ही है। इसका और अधिक वर्णन कणाद के परमाणुवाद में पाया जाता है। आधुनिक विज्ञान में भी परमाणु को अनन्तिम अविभाज्य कण माना जाता है, जिससे यह ब्रह्माण्ड बना हुआ है। *श्रीमद्भागवत* ज्ञान के समस्त वर्णनों की पूर्ण पाठपुस्तक है, जिसमें परमाणुवाद भी सम्मिलित है। शाश्वत काल का क्षुद्र सूक्ष्म रूप परमाणु है।

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सतः—प्रभावशाली अभिव्यक्ति का; एव—निश्चय ही; पद-अर्थस्य—भौतिक वस्तुओं का; स्वरूप-अवस्थितस्य—प्रलय काल तक एक ही रूप में रहने वाला; यत्—जो; कैवल्यम्—एकत्व; परम—परम; महान्—असीमित; अविशेषः—स्वरूप; निरन्तरः—शाश्वत रीति से।

परमाणु अभिव्यक्त ब्रह्माण्ड की चरम अवस्था है। जब वे विभिन्न शरीरों का निर्माण किये बिना अपने ही रूपों में रहते हैं, तो वे असीमित एकत्व (कैवल्य) कहलाते हैं। निश्चय ही भौतिक रूपों में विभिन्न शरीर हैं, किन्तु परमाणु स्वयं में पूर्ण अभिव्यक्ति का निर्माण करते हैं।

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ।
संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कालः—समय; अपि—भी; अनुमितः—मापा हुआ; सौक्ष्म्ये—सूक्ष्म में; स्थौल्ये—स्थूल रूप में; च—भी; सत्तम—हे सर्वश्रेष्ठ; संस्थान—परमाणुओं का संयोग; भुक्त्या—गति द्वारा; भगवान्—भगवान्; अव्यक्तः—अप्रकट; व्यक्त-भुक्—समस्त भौतिक गति को नियंत्रित करने वाला; विभुः—महान् बलवान्।.

काल को शरीरों के पारमाणविक संयोग की गतिशीलता के द्वारा मापा जा सकता है। काल उन सर्वशक्तिमान भगवान् हरि की शक्ति है, जो समस्त भौतिक गति का नियंत्रण करते हैं यद्यपि वे भौतिक जगत में दृष्टिगोचर नहीं हैं।

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; कालः—नित्यकाल; परम-अणुः—पारमाणविक; वै—निश्चय ही; यः—जो; भुङ्क्ते—गुजरता है; परम-अणुताम्—एक परमाणु का अवकाश; सतः—सम्पूर्ण समुच्चय; अविशेष-भुक्—अद्वैत प्रदर्शन से गुजरने वाला; यः तु—जो; सः—वह; कालः—काल; परमः—परम; महान्—महान्।.

परमाणु काल का मापन परमाणु के अवकाश विशेष को तय कर पाने के अनुसार किया जाता है। वह काल जो परमाणुओं के अव्यक्त समुच्चय को प्रच्छन्न करता है महाकाल कहलाता है।

तात्पर्य : काल तथा अवकाश (दिक्) दो सहसम्बन्धी पद हैं। अणुओं के कतिपय अवकाश को तय करने के रूप में काल मापा जाता है। मानक काल की गणना सूर्य की गति के अनुसार की जाती है। एक परमाणु को पार करने में सूर्य जितना काल लेता है, वह परमाणु-काल के रूप में परिगणित किया जाता है। सबसे महान् काल अद्वैत अभिव्यक्ति के समग्र अस्तित्व को व्याप्त करता है। सारे ग्रह चक्कर लगाते हैं और आकाश को तय करते हैं और अवकाश परमाणुओं के रूप में परिगणित किया जाता है। प्रत्येक ग्रह की चक्कर लगाने की अपनी विशिष्ट कक्ष्या होती है, जिसमें वह बिना इधर-उधर हटे गति करता है। इसी तरह सूर्य की अपनी कक्ष्या है। प्रकृति के सृजन, पालन तथा संहार के काल की सम्पूर्ण गणना समस्त ग्रहों की गति की गणना के आधार पर तब तक की जाती है जब तक कि सृष्टि का अन्त नहीं हो जाता। इसे *परमकाल* कहते हैं।

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अणुः—द्विगुण परमाणु; द्वौ—दो; परम-अणु—परमाणु; स्यात्—बनते हैं; त्रसरेणुः—षट् परमाणु; त्रयः—तीन; स्मृतः—विचार किया हुआ; जाल-अर्क—खिड़की के पर्दे के छेदों से होकर धूप को; रश्मि—किरणों द्वारा; अवगतः—जाना जा सकता है; खम् एव—आकाश की ओर; अनुपतन् अगात्—ऊपर जाते हुए।.

स्थूल काल की गणना इस प्रकार की जाती है: दो परमाणु मिलकर एक द्विगुण परमाणु (अणु) बनाते हैं और तीन द्विगुण परमाणु (अणु) एक षट् परमाणु बनाते हैं। यह षट्परमाणु उस सूर्य प्रकाश में दृष्टिगोचर होता है, जो खिड़की के परदे के छेदों से होकर प्रवेश करता है। यह आसानी से देखा जा सकता है कि षट्परमाणु आकाश की ओर ऊपर जाता है।

तात्पर्य : परमाणु का वर्णन अदृश्य कण के रूप में किया जाता है, किन्तु जब ऐसे छह कण परस्पर मिलते हैं, तो वे *त्रसरेणु* कहलाते हैं और इन्हें खिड़की के परदे के छेदों से होकर आने वाली धूप में देखा जा सकता है।

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ।
शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

त्रसरेणु-त्रिकम्—तीन षट् परमाणुओं का संयोग; भुङ्क्ते—जब वे संयुक्त होते हैं; यः—जो; कालः—काल की अवधि; सः—वह; त्रुटिः—त्रुटि; स्मृतः—कहलाती है; शत-भागः—एक सौ त्रुटियाँ; तु—लेकिन; वेधः—वेध नाम से; स्यात्—यदि ऐसा होता है; तैः—उनके द्वारा; त्रिभिः—तीन गुना; तु—लेकिन; लवः—लव; स्मृतः—ऐसा कहलाता है।.

तीन त्रसरेणुओं के समुच्चयन में जितना समय लगता है, वह त्रुटि कहलाता है और एक सौ त्रुटियों का एक वेध होता है। तीन वेध मिलकर एक लव बनाते हैं।

तात्पर्य : यह गणना की गई है कि यदि एक सेंकड के १६८७.५ भाग किये जाँय तो हर भाग एक त्रुटि की अवधि है, जो कि अठारह परमाणु कणों के समुच्चयन का काल है। विभिन्न पिण्डों में परमाणुओं का ऐसा समुच्चयन भौतिक काल की गणना को जन्म देता है। इन विभिन्न अवधियों की गणना के लिए सूर्य केन्द्रबिन्दु है।

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ।
क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

निमेषः—निमेष नामक काल की अवधि; त्रि-लवः—तीन लवों की अवधि; ज्ञेयः—जानी जानी चाहिए; आम्नातः—ऐसा कहलाते हैं; ते—वे; त्रयः—तीन; क्षणः—क्षण; क्षणान्—ऐसे क्षण; पञ्च—पाँच; विदुः—समझना चाहिए; काष्ठाम्—काष्ठा नामक कालावधि; लघु—लघु नामक कालावधि; ताः—वे; दश पञ्च—पन्द्रह; च—भी।

तीन लवों की कालावधि एक निमेष के तुल्य है, तीन निमेष मिलकर एक क्षण बनाते हैं, पाँच क्षण मिलकर एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठा मिलकर एक लघु बनाते हैं।

तात्पर्य : गणना से ज्ञात होता है कि लघु दो मिनट के तुल्य होता है। वैदिक विद्या के रूप में काल की पारमाणविक गणना को समझने के लिए इसी आधार पर वर्तमान समय में परिणत किया जा सकता है।

लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ।
ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

लघूनि—ऐसे लघु (प्रत्येक दो मिनट का); वै—सही सही; समाम्नाता—कहलाता है; दश पञ्च—पन्द्रह; च—भी; नाडिका—एक नाडिका; ते—उनमें से; द्वे—दो; मुहूर्तः—क्षण; प्रहरः—तीन घंटे; षट्—छः; यामः—दिन या रात का चौथाई भाग; सप्त—सात; वा—अथवा; नृणाम्—मनुष्य की गणना का।

पन्द्रह लघु मिलकर एक नाडिका बनाते हैं जिसे दण्ड भी कहा जाता है। दो दण्ड से एक मुहूर्त बनता है। और मानवीय गणना के अनुसार छः या सात दण्ड मिलकर दिन या रात का चतुर्थांश बनाते हैं।

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

द्वादश-अर्ध—छह; पल—भार की माप का; उन्मानम्—मापक पात्र, मापना; चतुर्भिः—चार के भार के बराबर; चतुः-अङ्गुलैः—चार अंगुल माप का; स्वर्ण—सोने के; माषैः—भार का; कृत-छिद्रम्—छेद बनाकर; यावत्—जितना; प्रस्थ—एक प्रस्थ के जितना; जल-प्लुतम्—जल से भरा।

एक नाडिका या दण्ड के मापने का पात्र छः पल भार (१४ औंस) वाले ताम्र पात्र से तैयार किया जा सकता है, जिसमें चार माषा भार वाले तथा चार अंगुल लम्बे सोने की सलाई से एक छेद बनाया जाता है। जब इस पात्र को जल में रखा जाता है, तो इस पात्र को लबालब भरने में जो समय लगता है, वह एक दण्ड कहलाता है।

तात्पर्य : यहाँ यह सलाह दी जाती है कि ताँबे के मापक पात्र में जो छेद बनाया जाय वह छेद

चार माषा से अधिक भार वाली तथा चार अंगुल से अधिक लम्बी सलाई से न बनाया जाय। इससे छेद का व्यास सही रहता है। इस पात्र को जल में रखा जाता है। उसके ऊपर तक भर जाने का समय दण्ड कहलाता है। दण्ड की अवधि मापने की यह दूसरी विधि है, जिस तरह कि काँच के पात्र में बालू से समय मापा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सभ्यता के दिनों में भौतिकी, रसायन शास्त्र या उच्चतर गणित का अभाव न था। मापों की गणना सरल से सरल रूप में अनेक विधियों से की जाती थी।

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ।
पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यामाः—तीन घंटे; चत्वारः—चार; चत्वारः—तथा चार; मर्त्यानाम्—मनुष्यों के; अहनी—दिन की अवधि; उभे—रात तथा दिन दोनों; पक्षः—पखवाड़ा; पञ्च-दश—पन्द्रह; अहानि—दिन; शुक्लः—उजाला; कृष्णः—अँधेरा; च—भी; मानद—मापा हुआ।

यह भी गणना की गई है कि मनुष्य के दिन में चार प्रहर या याम होते हैं और रात में भी चार प्रहर होते हैं। इसी तरह पन्द्रह दिन तथा पन्द्रह रातें पखवाड़ा कहलाती हैं और एक मास में दो पखवाड़े (पक्ष) उजाला (शुक्ल) तथा अँधियारा (कृष्ण) होते हैं।

तयोः समुच्चयो मासः पितृणां तदहर्निशम् ।
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उनके; समुच्चयः—योग; मासः—महीना; पितृणाम्—पित-लोकों का; तत्—वह (मास); अहः-निशम्—दिन तथा रात; द्वौ—दोनों; तौ—महीने; ऋतुः—ऋतु; षट्—छः; अयनम्—छह महीनों में सूर्य की गति; दक्षिणम्—दक्षिणी; च—भी; उत्तरम्—उत्तरी; दिवि—स्वर्ग में।

दो पक्षों को मिलाकरएक मास होता है और यह अवधि पित-लोकों का पूरा एक दिन तथा रात है। ऐसे दो मास मिलकर एक ऋतु बनाते हैं और छह मास मिलकर दक्षिण से उत्तर तक सूर्य की पूर्ण गति को बनाते हैं।

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ।
संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अयने—सूर्य की गति (छह मास की) में; च—तथा; अहनी—देवताओं का दिन; प्राहुः—कहा जाता है; वत्सरः—एक पंचांग वर्ष; द्वादश—बारह मास; स्मृतः—ऐसा कहलाता है; संवत्सर-शतम्—एक सौ वर्ष; नृणाम्—मनुष्यों की; परम-आयुः—जीवन की अवधि, उम्र; निरूपितम्—अनुमानित की जाती है।

दो सौर गतियों से देवताओं का एक दिन तथा एक रात बनते हैं और दिन-रात का यह संयोग मनुष्य के एक पूर्ण पंचांग वर्ष के तुल्य है। मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष की है।

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ।
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥ १३॥

शब्दार्थ

ग्रह—प्रभावशील ग्रह यथा चन्द्रमा; ऋक्ष—अश्विनी जैसे तारे; तारा—तारा; चक्र-स्थः—कक्ष्या में; परम-अणु-आदिना—परमाणुओं सहित; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; संवत्सर-अवसानेन—एक वर्ष के अन्त होने पर; पर्येति—अपनी कक्ष्या पूरी करता है; अनिमिषः—नित्य काल; विभुः—सर्वशक्तिमान।

सारे ब्रह्माण्ड के प्रभावशाली नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा परमाणु पर ब्रह्म के प्रतिनिधि दिव्य काल के निर्देशानुसार अपनी अपनी कक्ष्याओं में चक्कर लगाते हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि सूर्य परमेश्वर की आँख है और यह काल की अपनी विशिष्ट कक्ष्या में चक्कर लगाता है। इसी तरह सूर्य से लेकर परमाणु तक सारे पिंड *कालचक्र* के वशीभूत हैं और इनमें से हर एक का एक संवत्सर का नियमित चक्र-काल है।

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ।
अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥ १४॥

शब्दार्थ

संवत्सरः—सूर्य की कक्ष्या; परिवत्सरः—बृहस्पति की प्रदक्षिणा; इडा-वत्सरः—नक्षत्रों की कक्ष्या; एव—जैसे हैं; च—भी; अनुवत्सरः—चन्द्रमा की कक्ष्या; वत्सरः—एक पंचांग वर्ष; च—भी; विदुर—हे विदुर; एवम्—इस प्रकार; प्रभाष्यते—ऐसा उनके बारे में कहा जाता है।

सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र तथा आकाश के तारों के पाँच भिन्न-भिन्न नाम हैं और उनमें से प्रत्येक का अपना संवत्सर है।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के उपर्युक्त श्लोकों में भौतिकी, रसायन विज्ञान, गणित, ज्योतिर्विज्ञान, काल तथा दिक् विषयों की चर्चा हुई है। वे उन विषयों के जिज्ञासुओं के लिए निश्चय ही अतीव रोचक हैं, किन्तु जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम उनकी सम्यक् व्याख्या तकनीकी ज्ञान के रूप में नहीं दे सकते। इस विषय का सारांश इस कथन द्वारा दिया गया है कि ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के ऊपर *काल* का

परम नियंत्रण है और यह काल भगवान् का स्वांश है। उन के बिना कुछ भी विद्यमान नहीं रह सकता; अत: हर वस्तु हमारे अल्प ज्ञान के लिए, चाहे वह कितनी ही अद्‌भुत क्यों न हो, भगवान् की जादुई छड़ी का करतब प्रतीत होती है। जहाँ तक काल का सम्बन्ध है हम आधुनिक घड़ी के अनुसार काल की तालिका दे रहे हैं—

एक त्रुटि — ८/१३,५०० सेकंड

एक वेध — ८/१३५ सेकंड

एक लव — ८/४५ सेकंड

एक निमेष — ८/१५ सेकंड

एक क्षण — ८/५ सेकंड

एक काष्ठा — ८ सेकंड

एक लघु — २ मिनट

एक दण्ड — ३० मिनट

एक प्रहर — ३ घंटे

एक दिन — १२ घंटे

एक रात — १२ घंटे

एक पक्ष — १५ दिन

दो पक्ष का १ मास तथा १२ मास का १ पंचांग वर्ष या सूर्य की पूरी एक कक्षा होते हैं। मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष अनुमानित है। नित्य काल की माप को नियंत्रित करने की यही विधि है।

ब्रह्म-संहिता (५.५२) में इस नियंत्रण की परिपुष्टि इस प्रकार हुई है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरसेषतेजाः।

यस्याज्ञया भ्रमति संभृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनके नियंत्रण में भगवान् की आँख माना जाने

वाला सूर्य तक नित्य काल की स्थिर कक्ष्या के भीतर चक्कर लगाता है। सूर्य समस्त लोकों का राजा है और उसमें उष्मा तथा प्रकाश की असीम शक्ति है।''

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्
तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; सृज्य—सृष्टि के; शक्तिम्—बीज; उरुधा—विभिन्न प्रकारों से; उच्छ्वसयन्—शक्ति देते हुए; स्व-शक्त्या—अपनी शक्ति से; पुंसः—जीव का; अभ्रमाय—अंधकार दूर करने के लिए; दिवि—दिन के समय; धावति—चलता है; भूत-भेदः—अन्य समस्त भौतिक रूप से पृथक्; काल-आख्यया—नित्यकाल के नाम से; गुण-मयम्—भौतिक परिणाम; क्रतुभिः—भेंटों के द्वारा; वितन्वन्—विस्तार देते हुए; तस्मै—उसको; बलिम्—उपहार की वस्तुएँ; हरत—अर्पित करे; वत्सर-पञ्चकाय—हर पाँच वर्ष की भेंट।

हे विदुर, सूर्य अपनी असीम उष्मा तथा प्रकाश से सारे जीवों को जीवन देता है। वह सारे जीवों की आयु को इसलिए कम करता है कि उन्हें भौतिक अनुरक्ति के मोह से छुड़ाया जा सके। वह स्वर्गलोक तक ऊपर जाने के मार्ग को लम्बा (प्रशस्त) बनाता है। इस तरह वह आकाश में बड़े वेग से गतिशील है, अतएव हर एक को चाहिए कि प्रत्येक पाँच वर्ष में एक बार पूजा की समस्त सामग्री के साथ उसको नमस्कार करे।

विदुर उवाच

पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ।
परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; पितृ—पितृलोक; देव—स्वर्गलोक; मनुष्याणाम्—तथा मनुष्यों की; आयुः—आयु; परम्—अन्तिम; इदम्—उनकी अपनी माप में; स्मृतम्—परिगणित; परेषाम्—श्रेष्ठ जीवों की; गतिम्—आयु; आचक्ष्व—कृपया गणना करें; ये—वे जो; स्युः—हैं; कल्पात्—कल्प से; बहिः—बाहर; विदः—अत्यन्त विद्वान।

विदुर ने कहा : मैं पितृलोकों, स्वर्गलोकों तथा मनुष्यों के लोक के निवासियों की आयु को समझ पाया हूँ। कृपया अब मुझे उन महान् विद्वान जीवों की जीवन अवधि के विषय में बतायें जो कल्प की परिधि के परे हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा के दिन की समाप्ति पर ब्रह्माण्ड का जो आंशिक विलय होता है उससे सारे लोक प्रभावित नहीं होते। अत्यधिक विद्वान जीवों, यथा सनक तथा भृगु के लोक कल्पों के प्रलयों से

प्रभावित नहीं होते। सारे लोक विभिन्न प्रकार के हैं और इनमें से हर एक भिन्न *कालचक्र* द्वारा नियंत्रित होता है। पृथ्वी लोक का काल अन्य अधिक उच्चस्थ लोकों पर लागू नहीं होता। अतएव विदुर यहाँ पर अन्य लोकों की कालावधि के विषय में प्रश्न कर रहे हैं।

भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ।
विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७॥

शब्दार्थ

भगवान्—हे आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली; वेद—आप जानते हैं; कालस्य—नित्य काल की; गतिम्—चालें; भगवतः—भगवान् के; ननु—निश्चय ही; विश्वम्—पूरा ब्रह्माण्ड; विचक्षते—देखते हैं; धीराः—स्वरूपसिद्ध व्यक्ति; योग-राद्धेन—योग दृष्टि के बल पर; चक्षुषा—आँखों द्वारा।

हे आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली, आप उस नित्य काल की गतियों को समझ सकते हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का नियंत्रक स्वरूप है। चूँकि आप स्वरूपसिद्ध व्यक्ति हैं, अतः आप योग दृष्टि की शक्ति से हर वस्तु देख सकते हैं।

तात्पर्य : जो योगशक्ति की सर्वोच्च सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं और भूत, वर्तमान तथा भविष्य की हर वस्तु को देख सकते हैं, वे *त्रिकालज्ञ* कहलाते हैं। इसी तरह भगवद्भक्त शास्त्रों की हर वस्तु को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। श्रीकृष्ण के भक्तगण कृष्ण विज्ञान के साथ ही साथ भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों की स्थिति को बिना किसी कठिनाई के सरलता से समझ सकते हैं। भक्तों को किसी योगसिद्धि के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। वे हर एक के हृदय में आसीन भगवान् की कृपा से हर बात को समझने में सक्षम होते हैं।

मैत्रेय उवाच
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; कृतम्—सत्ययुग; त्रेता—त्रेतायुग; द्वापरम्—द्वापरयुग; च—भी; कलिः—कलियुग; च—तथा; इति—इस प्रकार; चतुः-युगम्—चारों युग; दिव्यैः—देवताओं के; द्वादशभिः—बारह; वर्षैः—हजारों वर्ष; स-अवधानम्—लगभग; निरूपितम्—निश्चित किया गया।

मैत्रेय ने कहा : हे विदुर, चारों युग सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि युग कहलाते हैं। इन सबों के कुल वर्षों का योग देवताओं के बारह हजार वर्षों के बराबर है।

तात्पर्य : देवताओं का वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्षों के बराबर होता है। जैसाकि आगे के श्लोकों से स्पष्ट हो जायेगा, देवताओं के १२,००० वर्ष, जिसमें संधिकाल की अवधियाँ अर्थात् *युग सन्ध्याएँ* सम्मिलित हैं उपर्युक्त चार युगों के योग के तुल्य हैं। इस तरह उपर्युक्त चार युगों का सम्पूर्ण योग ४,३२०,००० वर्ष है।

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
सङ्ख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चत्वारि—चार; त्रीणि—तीन; द्वे—दो; च—भी; एकम्—एक; कृत-आदिषु—सत्य युग में; यथा-क्रमम्—बाद में अन्य; सङ्ख्यातानि—संख्या वाले; सहस्राणि—हजारों; द्वि-गुणानि—दुगुना; शतानि—सौ; च—भी।

सत्य युग की अवधि देवताओं के ४,८०० वर्ष के तुल्य है; त्रेतायुग की अवधि ३,६०० दैवी वर्षों के तुल्य, द्वापर युग की २,४०० वर्ष तथा कलियुग की अवधि १,२०० दैवी वर्षों के तुल्य है।

तात्पर्य : जैसाकि ऊपर कहा गया है देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्षों के बराबर होता है। अत: सत्ययुग की अवधि ४,८००×३६०=१७,२८,००० वर्ष हुई। इसी तरह त्रेतायुग की अवधि ३६००×३६०=१२,९६,००० वर्ष, द्वापर युग की २,४००×३६०=८,६४,००० वर्ष तथा कलियुग की अवधि १,२००×३६०=४,३२,००० वर्ष है।

सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालः शतसङ्ख्ययोः ।
तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सन्ध्या—पहले का बीच का काल; सन्ध्या-अंशयोः—तथा बाद का बीच का काल; अन्तः—भीतर; यः—जो; कालः—समय की अवधि; शत-सङ्ख्ययोः—सैकड़ों वर्ष; तम् एव—वह अवधि; आहुः—कहते हैं; युगम्—युग; तत्-ज्ञाः—दक्ष ज्योतिर्विद; यत्र—जिसमें; धर्मः—धर्म; विधीयते—सम्पन्न किया जाता है।

प्रत्येक युग के पहले तथा बाद के सन्धिकाल, जो कि कुछ सौ वर्षों के होते हैं, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, दक्ष ज्योतिर्विदों के अनुसार युग-सन्ध्या या दो युगों के सन्धि काल कहलाते हैं। इन अवधियों में सभी प्रकार के धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते ।
स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धर्म; चतुः-पात्—पूरे चार विस्तार (पाद); मनुजान्—मानव जाति; कृते—सत्ययुग में; समनुवर्तते—ठीक से पालित; सः—वह; एव—निश्चय ही; अन्येषु—अन्यों में; अधर्मेण—अधर्म के प्रभाव से; व्येति—पतन को प्राप्त हुआ; पादेन—एक अंश से; वर्धता—धीरे धीरे वृद्धि करता हुआ।

हे विदुर, सत्ययुग में मानव जाति ने उचित तथा पूर्णरूप से धर्म के सिद्धान्तों का पालन किया, किन्तु अन्य युगों में ज्यों ज्यों अधर्म प्रवेश पाता गया त्यों त्यों धर्म क्रमशः एक एक अंश घटता गया।

तात्पर्य : सत्ययुग में धार्मिक सिद्धान्तों को पूरी तरह सम्पन्न किया जाता था। धीरे धीरे बाद के युगों में धर्म के सिद्धान्त एक एक अंश करके घटते गए। दूसरे शब्दों में, सम्प्रति एक अंश धर्म है और तीन अंश अधर्म। इसलिए इस युग में लोग अधिक सुखी नहीं हैं।

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों के; युग—चार युग; साहस्रम्—एक हजार; बहिः—बाहर; आब्रह्मणः—ब्रह्मलोक तक; दिनम्—दिन है; तावती—वैसा ही (काल); एव—निश्चय ही; निशा—रात है; तात—हे प्रिय; यत्—क्योंकि; निमीलति—सोने चला जाता है; विश्व-सृक्—ब्रह्मा।

तीन लोकों (स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल) के बाहर चार युगों को एक हजार से गुणा करने से ब्रह्मा के लोक का एक दिन होता है। ऐसी ही अवधि ब्रह्मा की रात होती है, जिसमें ब्रह्माण्ड का स्रष्टा सो जाता है।

तात्पर्य : जब ब्रह्माजी अपनी रात्रि के समय सो जाते हैं, तो ब्रह्मलोक से नीचे के तीनों लोक प्रलय जल में निमग्न रहते हैं। सोते हुए ब्रह्माजी गर्भोदकशायी विष्णु के विषय में स्वप्न देखते हैं और ध्वस्त हुए क्षेत्र के पुनर्वासन हेतु भगवान् से आदेश लेते हैं।

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ।
यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

निशा—रात; अवसाने—समाप्ति; आरब्धः—प्रारम्भ करते हुए; लोक-कल्पः—तीन लोकों की फिर से उत्पत्ति; अनुवर्तते—पीछे पीछे आती है; यावत्—जब तक; दिनम्—दिन का समय; भगवतः—भगवान् (ब्रह्मा) का; मनून्—मनुओं; भुञ्जन्—विद्यमान रहते हुए; चतुः-दश—चौदह।

ब्रह्मा की रात्रि के अन्त होने पर ब्रह्मा के दिन के समय तीनों लोकों का पुनः सृजन प्रारम्भ होता है और वे एक के बाद एक लगातार चौदह मनुओं के जीवन काल तक विद्यमान रहते हैं।

तात्पर्य : प्रत्येक मनु के जीवन के अन्त में छोटे छोटे प्रलय भी होते रहते हैं।

स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

स्वम्—अपना; स्वम्—तदनुसार; कालम्—जीवन की अवधि, आयु; मनुः—मनु; भुङ्क्ते—भोग करता है; स-अधिकाम्—की अपेक्षा कुछ अधिक; हि—निश्चय ही; एक-सप्ततिम्—इकहत्तर।

प्रत्येक मनु चतुर्युगों के इकहत्तर से कुछ अधिक समूहों का जीवन भोग करता है।

तात्पर्य : जैसाकि *विष्णु पुराण* में वर्णित है मनु की आयु चतुर्युगों के इकहत्तर समूहों की होती है। एक मनु की आयु दैवी गणना के अनुसार लगभग ८,५२,००० वर्ष या मनुष्य गणना में ३०,६७,२०,००० वर्ष होती है।

मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ।
भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ २५॥

शब्दार्थ

मनु-अन्तरेषु—प्रत्येक मनु के अवसान के बाद; मनवः—अन्य मनु; तत्-वंश्याः—तथा उनके वंशज; ऋषयः—सात विख्यात ऋषि; सुराः—भगवान् के भक्त; भवन्ति—उन्नति करते हैं; च एव—वे सभी भी; युगपत्—एक साथ; सुर-ईशाः—इन्द्र जैसे देवता; च—तथा; अनु—अनुयायी; ये—समस्त; च—भी; तान्—उनको।

प्रत्येक मनु के अवसान के बाद क्रम से अगला मनु अपने वंशजों के साथ आता है, जो विभिन्न लोकों पर शासन करते हैं। किन्तु सात विख्यात ऋषि तथा इन्द्र जैसे देवता एवं गन्धर्व जैसे उनके अनुयायी मनु के साथ साथ प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं और इनमें से हर एक के पृथक्-पृथक् वंशज होते हैं।

एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ।
तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः ॥ २६॥

शब्दार्थ

एषः—ये सारी सृष्टियाँ; दैनम्-दिनः—प्रतिदिन; सर्गः—सृष्टि; ब्राह्मः—ब्रह्मा के दिनों के रूप में; त्रैलोक्य-वर्तनः—तीनों लोकों का चक्कर; तिर्यक्—मनुष्येतर पशु; नृ—मनुष्य; पितृ—पितृलोक के; देवानाम्—देवताओं के; सम्भवः—प्राकट्य; यत्र—जिसमें; कर्मभिः—सकाम कर्मों के चक्र में।

ब्रह्मा के दिन के समय सृष्टि में तीनों लोक—स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल लोक—चक्कर लगाते हैं तथा मनुष्येतर पशु, मनुष्य, देवता तथा पितृगण समेत सारे निवासी अपने अपने सकाम कर्मों के अनुसार प्रकट तथा अप्रकट होते रहते हैं।

मन्वन्तरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ।
मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २७॥

शब्दार्थ

मनु-अन्तरेषु—प्रत्येक मनु-परिवर्तन में; भगवान्—भगवान्; बिभ्रत्—प्रकट करते हुए; सत्त्वम्—अपनी अन्तरंगा शक्ति; स्व-मूर्तिभिः—अपने विभिन्न अवतारों द्वारा; मनु-आदिभिः—मनुओं के रूप में; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अवति—पालन करता है; उदित—खोजी; पौरुषः—दैवशक्तियाँ।

प्रत्येक मनु के बदलने के साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विभिन्न अवतारों के रूप में यथा मनु इत्यादि के रूप में अपनी अन्तरंगा शक्ति प्रकट करते हुए अवतीर्ण होते हैं। इस तरह प्राप्त हुई शक्ति से वे ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं।

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ।
कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २८॥

शब्दार्थ

तमः—तमोगुण या रात का अंधकार; मात्राम्—नगण्य अंशमात्र; उपादाय—स्वीकार करके; प्रतिसंरुद्ध-विक्रमः—अभिव्यक्ति की सारी शक्ति को रोक करके; कालेन—नित्य काल के द्वारा; अनुगत—विलीन; अशेषः—असंख्य जीव; आस्ते—रहता है; तूष्णीम्—मौन; दिन-अत्यये—दिन का अन्त होने पर।

दिन का अन्त होने पर तमोगुण के नगण्य अंश के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड की शक्तिशाली अभिव्यक्ति रात के अँधेरे में लीन हो जाती है। नित्यकाल के प्रभाव से असंख्य जीव उस प्रलय में लीन रहते हैं और हर वस्तु मौन रहती है।

तात्पर्य : यह श्लोक ब्रह्मा की रात्रि की व्याख्या है, जो प्रकृति के तमोगुण के क्षुद्र अंश के सम्पर्क में काल के प्रभाव का परिणाम है। तीनों लोकों का प्रलय तमस के अवतार रुद्र द्वारा लाया जाता है, जो नित्य काल की उस अग्नि के द्वारा प्रदर्शित होता है, जो तीनों लोकों में प्रज्ज्वलित रहती है। ये तीनों लोक भूः, भुवः तथा स्वः (पाताल, मर्त्य तथा स्वर्ग) कहलाते हैं। असंख्य जीव उस प्रलय में लीन

होते हैं, जो परमेश्वर की शक्ति के दृश्य पर पटाक्षेप जैसी प्रतीत होती है और इस तरह हर वस्तु मौन हो जाती है।

तमेवान्वपि धीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ।
निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—वह; एव—निश्चय ही; अनु—पीछे; अपि धीयन्ते—दृष्टि से लुप्त हो जाते हैं; लोकाः—लोक; भूः-आदयः—तीनों लोक, भूः, भुवः तथा स्वः; त्रयः—तीन; निशायाम्—रात में; अनुवृत्तायाम्—सामान्य; निर्मुक्त—बिना चमक दमक के; शशि—चन्द्रमा; भास्करम्—सूर्य।

जब ब्रह्मा की रात शुरू होती है, तो तीनों लोक दृष्टिगोचर नहीं होते और सूर्य तथा चन्द्रमा तेज विहीन हो जाते हैं जिस तरह कि सामान्य रात के समय होता है।

तात्पर्य : ऐसा समझा जाता है कि सूर्य तथा चन्द्रमा की चमक तीनों लोकों की परिधि से अदृश्य हो जाती है, किन्तु स्वयं सूर्य तथा चन्द्रमा लुप्त नहीं होते। वे ब्रह्माण्ड के शेष भाग में, जो तीनों लोकों के मंडल से परे है, प्रकट होते हैं। प्रलयग्रस्त भाग सूर्य की किरणों या चन्द्रमा की चमक के बिना रह जाता है। सर्वत्र अंधकार रहता है और जल भरा रहता है और न रुकने वाली वायु चलती है जैसाकि अगले श्लोकों में बतलाया गया है।

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना ।
यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

त्रि-लोक्याम्—जब तीनों लोको के मंडल; दह्यमानायाम्—प्रज्वलित; शक्त्या—शक्ति के द्वारा; सङ्कर्षण—संकर्षण के मुख से; अग्निना—आग से; यान्ति—जाते हैं; ऊष्मणा—ताप से तपे हुए; महः-लोकात्—महर्लोक से; जनम्—जनलोक; भृगु—भृगु मुनि; आदयः—इत्यादि; अर्दिताः—पीड़ित।

संकर्षण के मुख से निकलने वाली अग्नि के कारण प्रलय होता है और इस तरह भृगु इत्यादि महर्षि तथा महर्लोक के अन्य निवासी उस प्रज्वलित अग्नि की उष्मा से, जो नीचे के तीनों लोकों में लगी रहती है, व्याकुल होकर जनलोक को चले जाते हैं।

तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ।
प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब; त्रि-भुवनम्—तीनों लोक; सद्यः—उसके तुरन्त बाद; कल्प-अन्त—प्रलय के प्रारम्भ में; एधित—उमड़ कर; सिन्धवः—सारे समुद्र; प्लावयन्ति—बाढ़ से जलमग्न हो जाते हैं; उत्कट—भीषण; आटोप—क्षोभ; चण्ड—अंधड़; वात—हवाओं द्वारा; ईरित—बहाई गई; ऊर्मयः—लहरें।

प्रलय के प्रारम्भ में सारे समुद्र उमड़ आते हैं और भीषण हवाएँ उग्र रूप से चलती हैं। इस तरह समुद्र की लहरें भयावह बन जाती हैं और देखते ही देखते तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि संकर्षण के मुख से निकलने वाली प्रज्ज्वलित अग्नि देवताओं के एक सौ वर्ष तक या मनुष्यों के ३६,००० वर्षों तक धधकती रहती है। इसके पश्चात् अगले ३६,००० वर्षों तक मूसलाधार वर्षा के साथ साथ प्रचण्ड वायु तथा लहरें उठती हैं और समुद्र तथा महासागर उमड़ने लगते हैं। ७२,००० वर्षों के ये घात-प्रतिघात तीनों लोकों के आंशिक प्रलय के आरम्भ हैं। लोकों के इन प्रलयों को भूलकर लोग सभ्यता की भौतिक प्रगति में अपने को सुखी मानते हैं। यही माया कहलाती है अर्थात् ''वह जो नहीं हैं।''

अन्तः स तस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ।
योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; सः—वह; तस्मिन्—उस; सलिले—जल में; आस्ते—है; अनन्त—अनन्त के; आसनः—आसन पर; हरिः—भगवान्; योग—योग की; निद्रा—नींद; निमील-अक्षः—बन्द आँखें; स्तूय-मानः—प्रकीर्तित; जन-आलयैः—जनलोक के निवासियों द्वारा।

परमेश्वर अर्थात् भगवान् हरि अपनी आँखें बन्द किए हुए अनन्त के आसन पर जल में लेट जाते हैं और जनलोक के निवासी हाथ जोड़ कर भगवान् की महिमामयी स्तुतियाँ करते हैं।

तात्पर्य : हमें भगवान् की शयन अवस्था को अपनी नींद जैसा नहीं समझना चाहिए। यहाँ पर *योग निद्रा* शब्द का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है, जो सूचित करता है कि भगवान् की शयन अवस्था भी उनकी अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है। जब भी योग शब्द व्यवहृत किया जाता है इसे 'दिव्य' का द्योतक समझना चाहिए। दिव्य अवस्था में समस्त कार्यकलाप विद्यमान रहते हैं और उनकी महिमा का बखान भृगु जैसे महान् ऋषियों की स्तुतियों द्वारा होता है।

एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ।
अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विधेः—विधि से; अहः—दिनों; रात्रेः—रात्रियों के द्वारा; काल-गत्या—काल की प्रगति; उपलक्षितैः—ऐसे लक्षणों द्वारा; अपक्षितम्—घटती हुई; इव—सदृश; अस्य—उसकी; अपि—यद्यपि; परम-आयुः—आयु; वयः—वर्ष; शतम्—एक सौ।

इस तरह ब्रह्माजी समेत प्रत्येक जीव के लिए आयु की अवधि के क्षय की विधि विद्यमान रहती है। विभिन्न लोकों में काल के सन्दर्भ में हर किसी जीव की आयु केवल एक सौ वर्ष तक होती है।

तात्पर्य : विभिन्न जीवों के लिए विभिन्न लोकों में कालावधि के अनुसार हर जीव एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जीवन के ये सौ वर्ष प्रत्येक अवस्था में समान नहीं होते। एक सौ वर्षों की सबसे दीर्घ आयु ब्रह्माजी की होती है और ब्रह्मा का जीवन बहुत दीर्घ होने पर भी समय आने पर समाप्त हो जाता है। ब्रह्मा भी अपनी मृत्यु से भयभीत रहते हैं, अतएव वे भगवान् की भक्ति करते हैं जिससे वे माया के पाश से छुटकारा पा सकें। हाँ, पशुओं में उत्तरदायित्व का कोई बोध नहीं होता। किन्तु मनुष्य भी, जिनमें उत्तरदायित्व का बोध विकसित रहता है, भगवान् की भक्ति में लगे बिना अपना अमूल्य समय व्यर्थ खोते रहते हैं। वे आसन्न मृत्यु से डरे बिना मौज से रहते हैं। यह मानव समाज का पागलपन है। पागल मनुष्य का जीवन में कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। इसी तरह जो मनुष्य मरने के पूर्व उत्तरदायित्व का बोध विकसित नहीं कर लेता वह उस पागल व्यक्ति के समान है, जो भविष्य की किसी प्रकार की चिन्ता किये बिना भौतिक जीवन का आनन्द लेना चाहता है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अगले जीवन के लिए अपने को तैयार करने के लिए उत्तरदायी बने, भले ही उसकी आयु इस ब्रह्माण्ड के सबसे बड़े प्राणी ब्रह्मा जितनी क्यों न हो।

यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥ ३४॥

शब्दार्थ

यत्—जो; अर्धम्—आधा; आयुषः—आयु का; तस्य—उसका; परार्धम्—एक परार्ध; अभिधीयते—कहलाता है; पूर्वः—पहले वाला; पर-अर्धः—आधी आयु; अपक्रान्तः—बीत जाने पर; हि—निश्चय ही; अपरः—बाद वाला; अद्य—इस युग में; प्रवर्तते—प्रारम्भ करेगा।

ब्रह्मा के जीवन के एक सौ वर्ष दो भागों में विभक्त हैं प्रथमार्ध तथा द्वितीयार्ध या परार्ध। ब्रह्मा के जीवन का प्रथमार्ध समाप्त हो चुका है और द्वितीयार्ध अब चल रहा है।

तात्पर्य : इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर ब्रह्मा के जीवन के एक सौ वर्षों की अवधि की व्याख्या

की जा चुकी है और *भगवद्गीता* (८.१७) में भी इसका वर्णन हुआ है। ब्रह्मा की आयु के पचास वर्ष बीत चुके हैं और अगले पचास वर्ष अभी पूरे होने हैं। तब ब्रह्मा के लिए भी मृत्यु अपरिहार्य हो जाएगी।

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ।
कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

पूर्वस्य—प्रथमार्ध के; आदौ—प्रारम्भ में; पर-अर्धस्य—द्वितीयार्ध का; ब्राह्मः—ब्राह्म-कल्प; नाम—नामक; महान्—महान्; अभूत्—प्रकट था; कल्पः—कल्प; यत्र—जहाँ; अभवत्—प्रकट हुआ; ब्रह्मा—ब्रह्मा; शब्द-ब्रह्म इति—वेदों की ध्वनियाँ; यम्—जिसको; विदुः—वे जानते हैं।

ब्रह्मा के जीवन के प्रथमार्ध के प्रारम्भ में ब्राह्म-कल्प नामक कल्प था जिसमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। वेदों का जन्म ब्रह्मा के जन्म के साथ साथ हुआ।

तात्पर्य : *पद्मपुराण* (प्रभास काण्ड) के अनुसार ब्रह्मा के तीस दिनों में कई कल्प यथा वराह कल्प तथा पितृकल्प घटित हो जाते हैं। तीस दिन का ब्रह्मा का एक मास होता है, जो पूर्ण चन्द्रमा से लेकर चन्द्रमा के अस्त होने तक चलता है। ऐसे बारह मासों से पूरा वर्ष बनता है और पचास वर्ष एक परार्ध को पूरा करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा की आयु के आधे के तुल्य होते हैं। भगवान् का श्वेत वराह प्राकट्य ब्रह्मा का पहला जन्मदिन है। ब्रह्मा की जन्मतिथि हिन्दू ज्योतिष गणना के अनुसार मार्च मास में पड़ती है। यह कथन श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या से जैसे का तैसा उद्धृत है।

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ।
यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—ब्राह्म-कल्प का; एव—निश्चय ही; च—भी; अन्ते—के अन्त में; कल्पः—कल्प; अभूत्—उत्पन्न हुआ; यम्—जो; पाद्मम्—पाद्म; अभिचक्षते—कहलाता है; यत्—जिसमें; हरेः—भगवान् की; नाभि—नाभि में; सरसः—जलाशय से; आसीत्—था; लोक—ब्रह्माण्ड; सरोरुहम्—कमल।

प्रथम ब्राह्म-कल्प के बाद का कल्प पाद्म-कल्प कहलाता है, क्योंकि उस काल में विश्वरूप कमल का फूल भगवान् हरि के नाभि रूपी जलाशय से प्रकट हुआ।

तात्पर्य : ब्राह्म-कल्प के बाद का कल्प पाद्म-कल्प कहलाता है, क्योंकि उस कल्प में विश्व रूपी कमल विकसति होता है। कुछ पुराणों में पाद्म-कल्प को पितृकल्प भी कहा गया है।

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीच्छूकरो हरिः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; तु—लेकिन; कथितः—प्रसिद्ध; कल्पः—चालू कल्प; द्वितीयस्य—परार्ध का; अपि—निश्चय ही; भारत—हे भरतवंशी; वाराहः—वाराह; इति—इस प्रकार; विख्यातः—प्रसिद्ध है; यत्र—जिसमें; आसीत्—प्रकट हुआ; शूकरः—सूकर का रूप; हरिः—भगवान्।

हे भरतवंशी, ब्रह्मा के जीवन के द्वितीयार्ध में प्रथम कल्प वाराह कल्प भी कहलाता है, क्योंकि उस कल्प में भगवान् सूकर अवतार के रूप में प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : ब्राह्म, पाद्म तथा वाराह कल्प नामक विभिन्न कल्प अभिज्ञ व्यक्ति को कुछ चक्कर में डालने वाले लगते हैं। कुछ ऐसे विद्वान हैं, जो इन कल्पों को एक ही मानते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार ब्राह्म-कल्प प्रथमार्ध के प्रारम्भ में पाद्म-कल्प जैसा प्रतीत होता है। किन्तु हम तो मूल पाठ का पालन कर सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि वर्तमान कल्प ब्रह्मा की आयु की अवधि के द्वितीयार्ध में है।

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ।
अव्याकृतस्यानन्तस्य ह्यनादेर्जगदात्मनः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

कालः—नित्य काल; अयम्—यह (ब्रह्मा की आयु की अवधि से मापा गया); द्वि-परार्ध-आख्यः—ब्रह्मा के जीवन के दो अर्धों से मापा हुआ; निमेषः—एक क्षण से भी कम; उपचर्यते—इस तरह मापा जाता है; अव्याकृतस्य—अपरिवर्तित रहता है, जो, उसका; अनन्तस्य—असीम का; हि—निश्चय ही; अनादेः—आदि-रहित का; जगत्-आत्मनः—ब्रह्माण्ड की आत्मा का।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ब्रह्मा के जीवन के दो भागों की अवधि भगवान् के लिए एक निमेष (एक सेकेंड से भी कम) के बराबर परिगणित की जाती है। भगवान् अपरिवर्तनीय तथा असीम हैं और ब्रह्माण्ड के समस्त कारणों के कारण हैं।

तात्पर्य : महर्षि मैत्रेय ने काल के विभिन्न मापों का परमाणु से लेकर ब्रह्मा की आयु की अवधि तक का पर्याप्त विवरण दिया है। अब वे अनन्त भगवान् के काल का कुछ अनुमान प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। वे उनके असीम काल का संकेत ब्रह्मा के जीवन के मानदण्ड द्वारा देते हैं। ब्रह्मा की पूरी आयु की गणना भगवान् के काल के एक सेकेंड से भी कम है और वह *ब्रह्म-संहिता* (५.४८) में इस प्रकार बतलाई गई है :

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा: ।

विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''मैं समस्त कारणों के कारण भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनका स्वांश महाविष्णु है। असंख्य ब्रह्माण्डों के सारे प्रधान (ब्रह्मा-गण) उनके एक श्वास में लगने वाले समय की शरण ग्रहण करके जीवित रहते हैं।'' निर्विशेषवादी भगवान् के स्वरूप पर विश्वास नहीं करते, अत: वे भगवान् के शयन करने पर विश्वास नहीं करेंगे। उनका विचार अल्पज्ञान से उत्पन्न है। वे हर वस्तु की गणना मनुष्य की क्षमता के रूप में करते हैं। वे सोचते हैं कि परमेश्वर का अस्तित्व सक्रिय मानव जीवन के सर्वथा विपरीत है। चूँकि मनुष्य के इन्द्रियाँ होती हैं, अतएव भगवान इन्द्रिय-अनुभूति से विहीन होगा; चूँकि मनुष्य के स्वरूप है, अत: परमात्मा स्वरूप से विहीन होगा; चूँकि मनुष्य सोता है, अत: सर्वोपरि को नहीं सोना चाहिए। किन्तु *श्रीमद्भागवत* ऐसे निर्विशेषवादियों से सहमत नहीं। यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि परमेश्वर योग-निद्रा में शयन करते हैं जैसा पहले कहा जा चुका है। चूँकि वे सोते हैं, अत: स्वाभाविक है कि वे साँस लेंते होंगे और *ब्रह्म-संहिता* इसकी पुष्टि करती है कि उनके श्वास लेने की अवधि में असंख्य ब्रह्मा जन्म लेते तथा मरते हैं।

श्रीमद्भागवत तथा *ब्रह्म-संहिता* में पूर्ण मतैक्य है। नित्य काल कभी भी ब्रह्मा के जीवन के साथ नष्ट नहीं होता। यह चलता रहता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नियंत्रित करने की क्षमता इसमें नहीं है, क्योंकि भगवान् काल के नियंत्रक हैं। आध्यात्मिक जगत में काल तो निस्सन्देह, है, किन्तु कार्यकलापों पर इसका नियंत्रण नहीं होता। काल असीम है और आध्यात्मिक जगत भी असीम है, क्योंकि वहाँ पर हर वस्तु परम स्तर पर विद्यमान रहती है।

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ।
नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

कालः—नित्य काल; अयम्—यह; परम-अणु—परमाणु; आदिः—प्रारम्भ से; द्वि-परार्ध—काल की दो परम अवधियाँ; अन्तः—अन्त तक; ईश्वरः—नियन्ता; न—कभी नहीं; एव—निश्चय ही; ईशितुम्—नियंत्रित करने के लिए; प्रभुः—समर्थ; भूम्नः—ब्रह्मा का; ईश्वरः—नियन्ता; धाम-मानिनाम्—उनका जो देह में अभिमान रखने वाले हैं।

नित्य काल निश्चय ही परमाणु से लेकर ब्रह्मा की आयु के परार्धों तक के विभिन्न आयामों का नियन्ता है, किन्तु तो भी इसका नियंत्रण सर्वशक्तिमान (भगवान) द्वारा होता है। काल केवल उनका नियंत्रण कर सकता है, जो सत्यलोक या ब्रह्माण्ड के अन्य उच्चतर लोकों तक में देह में अभिमान करने वाले हैं।

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ।
आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

विकारैः—तत्त्वों के रूपान्तर द्वारा; सहितः—सहित; युक्तैः—इस प्रकार से मिश्रित; विशेष—अभिव्यक्तियाँ; आदिभिः—उनके द्वारा; आवृतः—प्रच्छन्न; आण्ड-कोशः—ब्रह्माण्ड; बहिः—बाहर; अयम्—यह; पञ्चाशत्—पचास; कोटि—करोड़; विस्तृतः—विस्तीर्ण।

यह दृश्य भौतिक जगत चार अरब मील के व्यास तक फैला हुआ है, जिसमें आठ भौतिक तत्त्वों का मिश्रण है, जो सोलह अन्य कोटियों में, भीतर-बाहर निम्नवत् रूपान्तरित हैं।

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सम्पूर्ण भौतिक जगत सोलह विविधताओं तथा आठ भौतिक तत्त्वों का प्रदर्शन है। भौतिक जगत का वैश्लेषिक अध्ययन सांख्य दर्शन की विषय- वस्तु है। सोलह विविधताओं में ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच इन्द्रिय-विषय आते हैं और आठ तत्त्व स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ हैं जिनके नाम हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार। ये सभी परस्पर मिश्रित होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं, जो चार अरब मील के व्यास में विस्तीर्ण है। हमारे अनुभव वाले इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त अन्य असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। इनमें से कुछ तो इस ब्रह्माण्ड से बड़े हैं और वे सभी एकसमान भौतिक तत्त्वों के अन्तर्गत एकसाथ संपुंजित रहते हैं जिनका वर्णन नीचे दिया हुआ है।

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

दश-उत्तर-अधिकै:—दस गुनी अधिक मोटाई वाली; यत्र—जिसमें; प्रविष्ट:—प्रविष्ट; परम-अणु-वत्—परमाणुओं की तरह; लक्ष्यते—(ब्रह्माण्डों का भार) प्रतीत होता है; अन्त:-गता:—एकसाथ रहते हैं; च—तथा; अन्ये—अन्य में; कोटिश:—संपुंजित; हि—क्योंकि; अण्ड-राशय:—ब्रह्माण्डों के विशाल संयोग।

ब्रह्माण्डों को ढके रखने वाले तत्त्वों की परतें पिछले वाली से दस गुनी अधिक मोटी होती हैं और सारे ब्रह्माण्ड एकसाथ संपुंजित होकर परमाणुओं के विशाल संयोग जैसे प्रतीत होते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माण्डों के आवरण (कोश) भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश के तत्त्वों से बने होते हैं और अपने से पहले वाले आवरण की अपेक्षा दसगुना मोटे होते हैं। ब्रह्माण्ड का पहला आवरण पृथ्वी है और यह ब्रह्माण्ड से दस गुना मोटी है। यदि ब्रह्माण्ड ४ अरब मील आकार का है, तो पृथ्वी के आवरण का आकार चार गुणा दस अर्थात् ४० अरब मील है। जल का आवरण पृथ्वी के आवरण से दसगुना मोटा है। और अग्नि का आवरण, जल के आवरण से दसगुना अधिक है। वायु का आवरण अग्नि के आवरण का दस गुना और आकाश का आवरण अग्नि से दस गुना होता है। यह ब्रह्माण्ड पदार्थ के आवरणों के भीतर आवरणों की तुलना में परमाणु जैसा प्रतीत होता है और ब्रह्माण्डों की संख्या उन लोगों को भी ज्ञात नहीं है, जो ब्रह्माण्डों के आवरणों का अनुमान लगा सकते हैं।

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मन: ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; आहु:—कहा जाता है; अक्षरम्—अच्युत; ब्रह्म—परम; सर्व-कारण—समस्त कारणों का; कारणम्—परम कारण; विष्णो: धाम—विष्णु का आध्यात्मिक निवास; परम्—परम; साक्षात्—निस्सन्देह; पुरुषस्य—पुरुष अवतार का; महात्मन:—महाविष्णु का।

इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कारणों के आदि कारण कहलाते हैं। इस प्रकार विष्णु का आध्यात्मिक धाम निस्सन्देह शाश्वत है और यह समस्त अभिव्यक्तियों के उद्गम महाविष्णु का भी धाम है।

तात्पर्य : महाविष्णु जो कि कारणार्णव में *योगनिद्रा* में शयन करते हैं और अपनी श्वास के द्वारा असंख्य ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करते हैं, भौतिक जगतों की क्षणिक अभिव्यक्ति के लिए *महत् तत्त्व* में क्षण भर के लिए ही प्रकट होते हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण के स्वांश हैं और इस तरह भगवान् कृष्ण से अभिन्न होकर भी भौतिक जगत में अवतार के रूप में उनका वैधानिक प्राकट्य अस्थायी है। भगवान् का आदि रूप वस्तुत: *स्वरूप* या असली रूप है और वे वैकुण्ठ जगत (विष्णुलोक) में नित्य वास

करते हैं। यहाँ पर प्रयुक्त *महात्-मनः* शब्द महाविष्णु को सूचित करने के लिए आया है और उनका असली स्वरूप भगवान् कृष्ण है, जो *परम* कहलाते हैं जिसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* में हुई है :

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

''परमेश्वर अर्थात् आदि भगवान् कृष्ण हैं, जो गोविन्द कहलाते हैं। उनका रूप शाश्वत, आनन्दमय तथा ज्ञानमय है और वे समस्त कारणों के आदि कारण हैं।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत ''परमाणु से काल की गणना'' नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।